॥ ओ३म् ॥

शरीर की वास्तविकता

संकलन व संपादन

स्वामी ध्रुवदेव परिव्राजक

प्रकाशक

दर्शन योग धर्मार्थ ट्रस्ट

आर्यवन, रोजड़, पत्रा. सागपुर, ता. तलोद जिला साबरकांठा (गुजरात) ३८३ ३०७

दूरभाष : (०२७७०) २८७४१८, २८७५१८

चलभाष: ९४०९४ १५०११, ९४०९४ १५०१७

Whatsapp - 94094 15011, 9978273084

Email : darshanyog@gmail.com • Website : www.darshanyog.org

youtube / Facebook / Skype : darshanyog

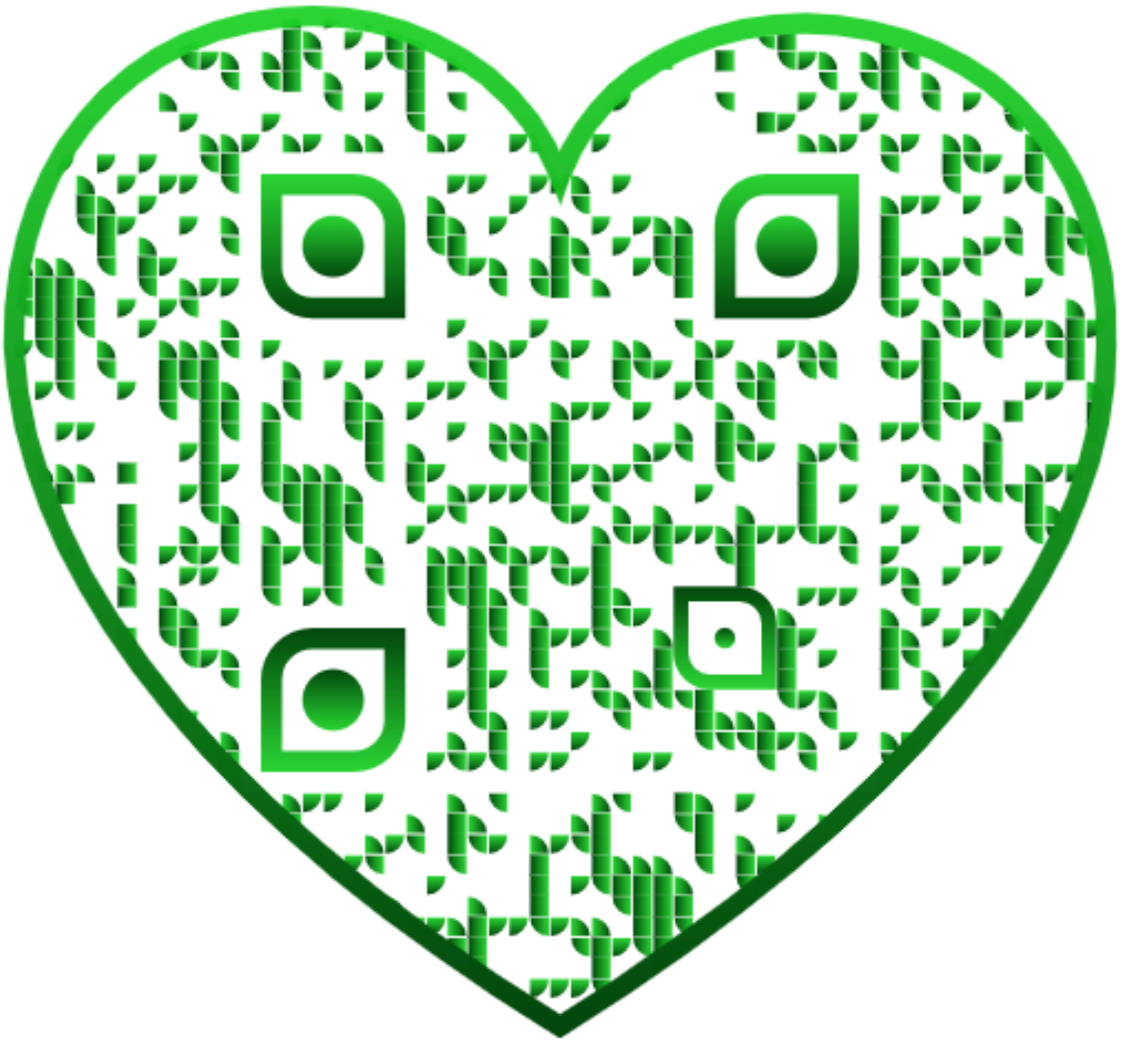

पुस्तक :	शरीर की वास्तविकता
टाइप :	बलभद्र शास्त्री
डिजाइन :	विनायक ग्राफिक्स
संस्करण :	प्रथम, कार्तिक २०७४, अक्टूबर २०१७
मूल्य :	₹ 10/-
मुद्रक :	यश प्रिंटर्स, नारोल

प्राप्ति स्थान :

अहमदाबाद :
१. वैदिक संस्थान, ओढ़व 079-22972340, 9426381302
२. आर्यसमाज, रायपुर दरवाजा बाहर 079-25454373, 9429518210
३. आर्यसमाज, सैजपुर बोघा 079-22815216, 9925515920
४. आर्यसमाज, थलतेज, 9825307630,

राउरकेला : श्रुति न्यास:, 9861335321

आमसेना : गुरुकुल आश्रम 7873111213,

होशंगाबाद : गुरुकुल महाविद्यालय, 9424471288

गाँधीधाम : श्री चंद्रेश जी आर्य, 9427458494,

दिल्ली :
१. विजयकुमार गोविन्दराम हासानन्द, 4408 नई सड़क 011-23977216,
२. आर्य प्रकाशन, अजमेरी गेट 9868244958,
३. आर्य प्रतिनिधि सभा, हनुमान रोड़ 9540040339

निलंगा : विजय वस्त्र भंडार, 9423349409

लोहारू : पतंजलि चिकित्सालय, आर्यसमाज, 9728455044

खेड़ा अफगान : वैदिक संस्कृति उत्थान न्यास, 08445044922

मेरठ : सत्यकाम इन्टरनेशनल स्कूल 9879064329, परली वैजनाथ आर्य प्रतिनिधि सभा, महाराष्ट्र - 9420330178

आर्य समाज मन्दिर :

पोरबन्दर : 9879530325,	**राजकोट :** 0281-2231146,
भरुच : 9327904074,	**गांधीनगर :** 9924751191,
आणंद : 9427858935,	**जामनगर :** 0288-2550220,
भावनगर : 0278-2571116,	**सुरत :** 0261-2423117,
पिम्परी : 020-27412016,	**नडियाद :** 09825717594,

रोहतक : दर्शनयोग महाविद्यालय, सुन्दरपुर, 7027026175, 9355674547

प्राक्कथन

शरीर के विषय में ठीक ज्ञान न होने के कारण मनुष्य अपने व दूसरों के शरीरों में राग-आसक्ति से युक्त हो जाता है। निज शरीर में राग होने पर वह अपने शरीर को हानि से बचाने का प्रयास करता है। ऐसे कार्यों को करने से बचता है जिनमें शरीर की हानि होने की सम्भावना हो। कभी-कभी व्यवहार-धर्म-कर्त्तव्य को प्रमुखता देने की स्थिति में शरीर की हानि को सहन करना अनिवार्य होता है। जैसे एक क्षत्रिय के लिए युद्धभूमि में शरीर रक्षा की अपेक्षा राष्ट्ररक्षा प्रमुख होती है। वह राष्ट्रहित के लिए अपने शरीर का बलिदान तक कर देता है। शरीर के प्रति राग से युक्त मनुष्य धर्म-कर्त्तव्य का अच्छी प्रकार से पालन नहीं करता। वह धर्मरक्षा की अपेक्षा शरीररक्षा को प्रधानता देता है। वह धर्म-व्यवहार के प्रति शिथिल रहता है। और भी अनेक दोष जैसे शोक, मिथ्याभिमान, व्यभिचार आदि शरीर के ठीक-ठीक ज्ञान के न होने पर उत्पन्न हो जाते हैं।

शरीर के विषय में यथार्थ ज्ञान यह है कि यह शरीर अनित्य, पवित्र, दु:खस्वरूप व जड़ है। प्रस्तुत पुस्तक में शरीर के अपवित्र स्वभाव को समझाने का प्रयास किया गया है। पाठक पुस्तक में वर्णित विचारों का स्मरण करें। फिर बार-बार पुस्तक वर्णित प्रक्रिया से शरीर को अपवित्र सिद्ध करते रहें। साथ में यम-नियमादि का पालन, ईश्वरोपासना आदि करते रहें। सब बुराईयों दोषों से पृथक् रहें। परिणामस्वरूप कालान्तर में शरीर अपवित्र लगने लगेगा।

यह पुस्तक गुरु, आचार्यों व विद्वानों के उपदेशों के संग्रह का

एक अंशविशेष है। अपनी योग्यता के अनुसार मैंने उस संग्रह में कुछ परिवर्तन व परिवर्धन किया गया है।

अज्ञानता के कारण हुए दोषों के लिए क्षमाप्रार्थी हूँ। यदि कोई सज्जन सुधार की दृष्टि से दोष विदित करायेंगे तो भविष्य में उचित समझ आने पर हटाने का प्रयास किया जायेगा।

मैं सर्वव्यापक, सच्चिदानन्दस्वरूप ईश्वर के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करता हूँ क्योंकि उन्हीं के द्वारा प्रदत्त ज्ञान, बल, सामर्थ्यादि के कारण ही यह शुभ हितकारी कार्य सम्पन्न हो सका। तत्पश्चात् पूज्य स्वामी सत्यपति जी का हृदय से अत्यन्त आभारी हूँ कि जिनकी कृपा से मुझे तत्त्वज्ञान या विवेक कैसे उत्पन्न किया जाता है उसकी यथार्थ प्रक्रिया का बोध हुआ। डॉ. राधावल्लभ जी से भी पर्याप्त संगृहीत सामग्री प्रस्तुत विषय मे प्राप्त हुई इसके लिए उनका हृदय से आभारी हूँ। इसके अतिरिक्त उन सब गुरु, आचार्य, विद्वानों आदि के प्रति कृतज्ञ हूँ जिनका प्रत्यक्ष वा परोक्षरूप से इस पुस्तक के प्रकाशन में सहयोग रहा।

निवेदक

स्वामी ध्रुवदेव परिव्राजक

॥ ओ३म् ॥

ईश्वरप्रदत्त शरीर जीव का वास्तविक निवास स्थान या घर नहीं है। जैसे यात्रा करते समय यात्री एक गाड़ी में कुछ समय बिता कर दूसरी गाड़ी पकड़ता है, फिर तीसरी गाड़ी इत्यादि। ज ब तक वह अपने वास्तविक निवास पर नहीं पहुँच जाता तब तक साधन का बदलना चलता रहता है। इसी प्रकार जब तक जीव अपने वास्तविक *निवासस्थान* [क]१ (ईश्वर या मोक्ष) को प्राप्त नहीं कर लेता तब तक एक शरीर से दूसरे शरीर में जाता रहता है। यह शरीररूपी अस्थायी निवास स्वभाव से अपवित्र है अर्थात् जब तक इस शरीर का अस्तित्व रहेगा तब तक यह गन्दा ही रहेगा। इसकी गन्दगी या मलिनता को दूर नहीं किया जा सकता। स्थायी निवास ईश्वर पवित्र स्वभाव वाला है। जीव अपवित्रता, गन्दगी, मलिनता को पसन्द नहीं करता। क्योंकि वह भी स्वभाव से पवित्र है। परन्तु अविद्या (मिथ्याज्ञान) के कारण जीव गन्दे शरीर को पवित्र समझता है। जब जीव को योगाभ्यास, संयम, ईश्वरोपासना, श्रवण-मनन-

टिप्पणी - (क) *स्थायी निवास या घर पर धर्मशाला, होटल आदि की अपेक्षा अधिक सुख होता है क्योंकि वहाँ पर सभी सुविधाएँ सरलता से उपलब्ध हो जाती हैं। परन्तु धर्मशाला आदि में घर जैसी अनुकूलताएँ नहीं होती। इसी प्रकार मोक्ष को प्राप्त कर लेने पर जीवों की सभी कामनाएँ पूरी हो जाती हैं तथा वे वहाँ सदा आनन्द में रहते हैं। जब कि बन्धन की अवस्था में संसार के अन्दर शरीरों के साथ रहते हुए जीवों की सभी कामनाएँ पूरी नहीं होती। वहाँ उन्हें निम्न स्तर के थोड़े सुख के साथ दु:ख भी भोगने पड़ते हैं। अत: यह सिद्ध होता है कि ईश्वर या मोक्ष जीवों का स्थायी निवास या घर है शरीर नहीं।*

निदिध्यासन-साक्षात्कार आदि उपायों से यह बोध या ठीक ज्ञान हो जाता है कि शरीर अपवित्र है व ईश्वर पवित्र है तो वह शरीरों को छोड़कर ईश्वर को प्राप्त करना चाहता है। वह शरीर पर मिथ्याभिमान नहीं करता तथा उसमें राग या आसक्ति भी उत्पन्न नहीं करता। शरीर का ठीक ज्ञान न होने पर जीव मिथ्याभिमान, राग, द्वेषादि करता है। इन के कारण हिंसा, व्यभिचार आदि दोष उत्पन्न होते हैं। ये सब दोष जीव के बन्धन का कारण हैं।

अब हम प्रमाणों के माध्यम से शरीर की स्वाभाविक अपवित्रता को समझने का प्रयास करेंगे –

महर्षि व्यास जी पातञ्जलयोगदर्शन के सूत्र

'अनित्याशुचिदुःखानात्मसु नित्यशुचिसुखात्मख्यातिरविद्या'

(पाद. २, सूत्र. ५) के भाष्य में कहते हैं कि –

स्थानाद् बीजादुपष्टम्भान्निःस्यन्दान्निधनादपि।
कायमाधेयशौचत्वात्पण्डिता ह्यशुचिं विदुः॥

प्रस्तुत श्लोक में छः हेतु दिए हैं जिनके कारण विद्वान् शरीर को अपवित्र जानते हैं। इन हेतुओं को क्रम से लेते हैं –

१ स्थानाद् :-

शरीर का उत्पत्तिस्थान अपवित्र होने से विद्वान् लोग शरीर को अपवित्र जानते हैं।

जैसे कोई हलवाई किसी मिठाई को गन्दे हाथों से मलिन पात्र (बर्तन) के अन्दर बनावे तो वह अशुद्ध मानी जाती है। उसको खाने की इच्छा नहीं होती। जैसे गेहूँ, चावल आदि अनाज अथवा भिण्डी आदि शाक कूड़े-कचरे आदि अथवा मानव के मल-मूत्र आदि से दूषित भूमि में उगाये जाते हैं तो उन्हें अशुद्ध माना जाता है। मनुस्मृति में भी ऐसे अन्न, शाक आदि के खाने का निषेध किया है –

'अभक्ष्याणि द्विजातीनाममेध्यप्रभवाणि च।'

अर्थ - द्विज अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रों को मलीन विष्ठा (मल) मूत्र आदि के संसर्ग (संपर्क) से उत्पन्न हुए शाक फल मूलादि नहीं खाने चाहिए। (स.प्र. दशमसमुल्लासाधारित)

वैसे ही शरीर का उत्पत्ति स्थान (जहाँ शरीर का निर्माण होता है) अर्थात् माता का गर्भाशय अपवित्र होने से शरीर अपवित्र है। गर्भाशय मांस, खूनादि से निर्मित होता है तथा उसमें चौबीसों घण्टे बदबूदार तरलपदार्थ का स्राव बताया जाता है। इस कालकोठरी जैसे या नरक जैसे अन्धकारपूर्ण गुप्तस्थान में (जो मलाशय व मूत्राशय के मध्यस्थित है) १० मास तक निवास करता हुआ प्राणी अपवित्र द्रव में उलटा लटका रहता है।

चरक संहिता के शारीरस्थान के छठें अध्याय में लिखा है –

'....गर्भ परतन्त्रवृत्तिर्मातरमाश्रित्य वर्तयत्युपस्नेहोपस्वेदाभ्यां गर्भाशये सदसद्भूताङ्गावयव....'

अर्थात् माता के आश्रित होकर सूक्ष्मरूप में वर्तमान व

स्थूलरूप में अवर्तमान अङ्ग-प्रत्यङ्ग वाला गर्भ गर्भाशय में गर्भाशय के उपस्नेह व उपस्वेद से अपना जीवन निर्वाह करता है। ये उपस्नेह व उपस्वेद अपवित्र पदार्थ हैं।

शरीर से बाहर निकलने पर प्राणी का शरीर इसी गन्दगी या अपवित्र पदार्थों से लथपथ होता है जैसे सूअर नाली के कीचड़ में बैठकर उससे लथपथ हो जाता है। ऐसे शरीर को छूने से भी घृणा होती है। उसको जलादि के माध्यम से शुद्ध किया जाता है। पुनरपि शुद्ध किया गया अत्यन्त पतली त्वचा से युक्त वह शरीर अप्रिय ही रहता है।

२ बीजात् :-

शरीर का बीज अत्यन्त मलिन होने से विद्वान् लोग शरीर को अपवित्र मानते हैं। जैसे खराब या घटिया बीज से उत्पन्न फसल भी घटिया होती है वैसे ही अपवित्र बीज से उत्पन्न होने के कारण यह शरीर अपवित्र है।

माता-पिता का रजवीर्य शरीर का बीज है। अर्थात् शरीर के निर्माण का मूल कारण है। यह शरीर द्वारा खाये पीये पदार्थों से बनता है तथा अपवित्र है। इसके प्रति उपेक्षा की, घृणा की भावना मन में रहती है।

३ उपष्टम्भात् :-

शरीर के आधार रस, रक्त, मांस आदि धातुएँ अपवित्र होने से विद्वान् लोग शरीर को अपवित्र मानते हैं।

जैसे कोई भोजन विकृत, मलिन, दुर्गन्धपूर्ण पदार्थों से बनाकर तैयार किया गया हो तो उसे खाने की इच्छा नहीं होती। उससे घृणा होती है। बाजार में बनी वस्तुओं के विषय में जब यह विचार मन में आता है कि कहीं इनमें दूषित तेल, मैदा, आटे, घी आदि का प्रयोग तो नहीं हुआ ? तो बाजार के भक्ष्य या भोजन को लेने में रुचि नहीं होती। वैसे ही यह शरीर जिन रस, रक्तादि से बना है वे अपवित्र होने से यह शरीर अपवित्र है। [(क)२] अब रस,रक्तादि की अपवित्रता को समझने का प्रयास करेंगे –

(क) रस - खाया हुआ भोजन मुँह में लार से मिलकर जब पेट में जाता है तो वहाँ विद्यमान द्रव (क्लेदक कफ) से मिलकर कोमल हो जाता है। फिर जठराग्नि उस भोजन को पकाकर रस व मल में परिवर्तित कर देती है।

मुँह की लार अशुद्ध होती है। एक बार थूक देने पर कोई उसे देखना व स्पर्श करना पसन्द नहीं करता। मुँह में रोटी का एक ग्रास डालकर, उसे चबाकर, किसी कारण से उसे पात्र में निकाल देने पर, उस रोटी के ग्रास को पुनः कोई मनुष्य खाना नहीं चाहता। पेट के अन्दर का द्रव (क्लेदक कफ) व भोजन से बना रस भी अपवित्र है

टिप्पणी-(क) *गौतममुनिकृत न्यायदर्शन में आया है –* ***तन्निमित्तं त्ववयव्यभिमानः*** *(अ. २, आ. २, सूत्र ३) अर्थात् शरीर को अवयवों के रूप में देखकर जब उसको एक अवयवी के रूप में देखते हैं तो उसमें रागादि उत्पन्न होते हैं। इसके विपरीत जब शरीर को अवयवों के रूप में देखते हैं तो उसमें रागादि उत्पन्न नहीं होते तथा वह अत्यन्त घृणित प्रतीत होता है क्योंकि इसके अवयव अत्यन्त घृणित हैं।*

क्योंकि भोजन खाने के बाद किसी कारण से वमन (उलटी, कै) हो जाने पर पेट से निकले व सामने फैले खाये पीये को देखने, सूँघने पर अत्यन्त घृणा होती है।

(ख) रक्त - आयुर्वेद के विद्वान् ऐसा बताते हैं कि लगभग ५ दिन-रात रस रसगत अग्नि आदि से शनैः शनैः पकता है। जब अन्तिम समय आता है तब रञ्जक पित्त पके हुए रस को लाल रंग का कर देता है। इस प्रकार रस से रक्त बनता है। खून या रक्त एक घृणित पदार्थ है। शरीर से पृथक् होने पर यह जीवनहीन होकर सड़ने लगता है। रक्त को कोई देखना, छूना व चखना नहीं चाहता। शरीर के किसी अङ्ग में खून लगा हो तो तुरन्त उसको हटाना चाहते हैं। खून से लथपथ दुर्घटनाग्रस्त व्यक्ति को देखकर घृणा व भय के भाव उत्पन्न होते हैं। उसको कोई छूना नहीं चाहता। किसी स्थान पर खून पड़ा हो तो वहाँ बैठने की इच्छा नहीं होती।

कभी-कभी अनुचित आहार-विहार से –

(१) खून (जो स्वभाव से अपवित्र है) अशुद्ध या दूषित हो जाता है। ऐसे खून से युक्त अन्न को कुत्ता या कौआ नहीं खाते।

(२) खून में सूक्ष्म, गोल, पैररहित तांबे के रंग जैसे कृमि (कीड़े) पैदा हो जाते हैं। इनके प्रभाव से बाल, दाढ़ी, नाखून, लोम व पलकें गिर जाती हैं। ये कृमि व्रण (घाव) में भी अपना स्थान बना लेते हैं। तब

घाव में खुजली, रेंगने का अनुभव आदि होता है। जब ये अधिक बढ़ जाते हैं तब त्वचा, सिरा, स्नायु, मांस आदि को खा जाते हैं।

(३) पित्त से दूषित रक्त दुर्गन्धयुक्त, काला, चींटियों व मक्खियों के लिये अप्रिय हो जाता है।

(ग) मांस - शरीर में खून अपनी अग्नि आदि से पककर स्थिर बन जाता है। इसे मांस कहा जाता है। यह भी अपवित्र वस्तु है। इसको जलाने से तीक्ष्ण दुर्गन्ध पैदा होती है। मक्खी जिसका स्वभाव गन्दगी पर बैठना है मांस पर बैठती है। शरीर से अलग होने पर मांस सड़ने लगता है। जीवित शरीर में त्वचा को उधेड़कर मांस को देखने छूने में घृणा होती है।

(घ) मेद, अस्थि व मज्जा - शरीर में मांस के बाद मेद, मेद के बाद मज्जा, मज्जा के पश्चात् अस्थि (हड्डी) व हड्डी के बाद शुक्र का निर्माण होता है। ये सभी पदार्थ अपवित्र हैं। इनको कोई देखना व छूना पसन्द नहीं करता।

मनुष्य के अनुचित आहार-विहार से कभी –

(१) खून तथा मांस में मवाद उत्पन्न होकर उसमें कृमि (कीड़े) पैदा हो जाते हैं।

(२) मेद धातु के अत्यन्त दुष्ट होने पर पिडिकायें हो जाती हैं जिसके फलस्वरूप मांस सड़ने लगता है।

(३) शरीर में पित्त के प्रकोप से मांस सड़ने लगता है।

आयुर्वेद के ग्रन्थ में कहा है कि आहार व रस, रक्त, मांसादि धातुओं का जो पाक होता है उस पाक के दो परिणाम होते हैं –

१. सार	२. मल

आहार का सार रस व मल मलाशय व आन्त्रस्थित मल व मूत्र हैं जिनसे दुर्गन्धयुक्त गैसों की उत्पत्ति होती है।

रस का सार **रक्त व मल** कफ है।

रक्त का सार **मांस व मल पित्त** है।

मांस का सार **मेद व मल** कान, नाक आदि छिद्रों का मल है।

मेद का सार **अस्थि व मल** स्वेद (पसीना) है।

अस्थि का सार **मज्जा व मल** नाखून, बाल व रोम हैं।

मज्जा का सार **शुक्र व मल त्वचा का स्नेह (चिकनापन) व आँख का चिपचिपा कीचड़** है।

ये मल, मूत्र, कफ, पित्त, स्वेद, बाल आदि मल अपवित्र घृणित पदार्थ हैं।

कफ शरीर की संधियों – बंधक तन्तुओं – मांसपेशियों में स्नेहन का कार्य करता है। यह भी पाँच प्रकार के होते हैं। आमाशय में स्थित कफ क्लेदन, हृदय में स्थित कफ अवलम्बन, कण्ठ में स्थित कफ रसन, सिर में स्थित स्नेहन व सन्धियों में स्थित कफ श्लेष्मण का कार्य करता है।

पित्त विस्र गन्ध वाला अर्थात् कच्चे मांस की गन्ध के समान गन्ध वाला होता है। यह तरल पदार्थ के रूप में पीले रंग का कटु, अम्ल, नमकीन स्वादयुक्त होता है। इसके भी पाँच भेद हैं। जैसे – अग्नाशय में पाचक पित्त, यकृत् में रञ्जक पित्त, हृदय में सादक पित्त, दोनों नेत्रों में आलोचक पित्त तथा सम्पूर्ण शरीर में भ्राजक पित्त होता है। कभी अनुचित आहार-विहार से कफ में मवाद उत्पन्न होकर उसमें कीड़े पड़ जाते हैं।

आयुर्वेद के ग्रन्थ सुश्रुत में वात, पित्त, व कफ को शरीर के खम्भे कहा है – (अर्थात् यह शरीर इन अपवित्र वस्तुओं पर टिका हुआ है) –

वातपित्तश्लेष्माण एव देहसम्भवहेतवः,
तैरेवायापनैरधो- मध्योर्ध्वसन्निविष्टैः शरीरमिदं धार्यते
आगारमिव स्थूणाभि- स्त्रिभिः, अतश्च त्रिस्थूणमाहुरेके ।

(सुश्रुत सूत्रस्थानम् – अध्याय – २१)

जैसे मानव शरीर में रक्त मांसादि होते हैं वैसे ही पशु, पक्षी आदि के शरीरों में भी होते हैं। पशु-पक्षियों के रक्त, मांस आदि के परीक्षण से भी मनुष्य शरीर के रक्त, मांस आदि के स्वरूप को जाना जा सकता है। जैसे सड़क पर घूमता हुआ एक कुत्ता सहसा ट्रक के पहिये के नीचे आने से कुचल कर मर जाता है। चारों तरफ खून ही खून बिखर जाता है। उसकी आँतें व मल बाहर निकल आते हैं, वही एक दो दिन में फूल जाता है। मक्खियाँ बैठने लगती हैं। कौए व गिद्ध खाने लगते हैं। दुर्गन्ध मारने के कारण उसको कोई देखना पसन्द नहीं करता। इसी प्रकार रेलवे स्टेशन के प्लेटफार्म पर सडाँद

मारते मछलियों के पार्सल यात्रियों को परेशान कर देते हैं। पिंजरे में बंद सैंकड़ो की संख्या में कबूतर, चिड़ियों, मुर्गियों आदि के पास भयंकर बदबू होने से सांस लेना कठिन हो जाता है। कसाईखानों में भी दुर्गन्ध की भरमार होती है। इससे यह सिद्ध होता है कि पशु, पक्षियों के शरीर के अवयव अपवित्र हैं व उन अवयवों के समान मानव शरीर के अवयव भी अपवित्र हैं। शरीर में विद्यमान जीव रस, रक्तादि घृणित पदार्थों से बने व उनके मलों से युक्त शरीर के साथ हर समय रहता है।

विद्वान् लोग इस शरीर का भिन्न-भिन्न रूप में वर्णन करते हैं जैसे -

(१) यह शरीर रक्त, मांस आदि का पिण्ड है।

(२) यह शरीर मल, मूत्र आदि की पोटली है।

(३) यह शरीर कचरापेटी, कूड़ाघर या चलता फिरता शौचालय है।

(४) विरूप हड्डियों से खड़ा हुआ, मांस से लिपा-भरा हुआ, चमड़ी से ढका हुआ, पित्त-कफ-मज्जा-मेद-वसा (चिकनाई) से परिपूर्ण शरीर ऐसा है जैसे कोई भण्डार भाँति-भाँति के धन-अन्न बर्तन आदि से भरा हो। ऐसे शरीर में भोजन का स्वाद लेने की सोचना ऐसा ही है जैसे किसी मल, मूत्र, कफ आदि से सने कमरे में बैठकर भोजन करने की इच्छा करना।

(५) यह शरीर ऐसा है जैसे किसी चीनी मिट्टी या रबड़ के मनुष्याकार बने पुतले में यथास्थान उक्त मल, मूत्र आदि भर दिये गये हों। ऊपर से वह कितना भी चिकना, सुन्दर रंग वाला हो परन्तु उसे कोई प्यार न करेगा।

(६) यह शरीर ऐसा ही है जैसे मल, मूत्र, गोबर, कीचड़ आदि एक स्वच्छ व रंग आदि से भड़कीले बनाए घड़े में भरकर उसे ढक दिया गया हो।

(७) जैसे एक थाली में गोबर भरा हो व उस पर चाँदी का वर्क लगाकर ढक दें वैसे ही यह शरीर है। अगर शरीर की चमड़ी उतारकर उसे सड़क पर चला दिया जाए तो वह बहुत भयंकर दिखेगा।

(८) इस शरीर को अस्थियों के वक्रपंजर पर मांस, मज्जा आदि की तहें (पेशियाँ) बिछा-बिछाकर, स्नायुजाल से सुदृढ़ता से बांधा है। इसमें रस, रक्त व प्राण भरे हुए हैं। इसको पतली त्वचा से ढककर काले, सफेद, श्याम आदि रंगों से पोता गया है। बुद्धिमान् इसके आन्तरिक मलिनरूप के साक्षात्कार से 'मोह-विमुक्त' हो जाते हैं।

(९) बृहद्रथ राजा ने पुत्र को राज्य सौंपकर वन में शाकायन्य मुनि के पास जाकर अपने वैराग्य को दर्शाते हुए कहा –

भगवन्! अस्थिचर्मस्नायुमज्जामांसशुक्रशोणितश्लेष्मा-
श्रुदूषिकाविन्मूत्रवातपित्तकफसंघाते दुर्गन्धे
निःसारेऽस्मिञ्छरीरे किं कामोपभोगैः।

(मैत्र्यु. १.३)

महात्मन्! हड्डी, ताँत, चर्बी, मांस, वीर्य, रजः, रक्त, सिनक, आँसू, ढीड, मल, मूत्र, वातपित्तकफ वस्तुओं के ढेर या पिण्ड, दुर्गन्धपूर्ण निःसार इस शरीर में कामभोगों-विषयभोगों से क्या कुछ लाभ या सुख है ?

अस्थिस्थूणास्नायुयुतं मांसशोणितलेपनम्।
चर्मावनद्धं दुर्गन्धपूर्णं मूत्रपुरीषयोः॥

(महाभारत)

अर्थात् हड्डी, पृष्ठवंश, नाडियों से युक्त, मांस-रक्त से लथपथ, चमड़ी से ढके हुए, मलमूत्र की दुर्गन्ध से पूर्ण इस शरीर को छोड़।

(१०) चिकित्सक कहते हैं हम शरीर को काटकर सिलते हैं दूसरे व्यक्ति तो इसे देख भी नहीं सकते।

(११) यह शरीर मलमूत्रादि का समुदाय दुर्गन्धरूप मल से परिपूर्ण है। (ऋ.भा.भू. मुक्तिविषय)

(१२) यह शरीर **परमबीभत्स** अर्थात् अत्यन्त घृणित है।

(योगदर्शनव्यासभाष्यम्)

४ निःस्यन्दनाद् :-

शरीर से निरन्तर मलों के निकलते रहने से यह अपवित्र है।

शरीर में दो निचले भाग - गुदा व मूत्रमार्ग, सात ऊपर के भाग - दो आँखें, दो कान, दो नासिका व एक मुँह और रोमकूप इन सबको मलमार्ग कहा जाता है। शरीर में साढ़े तीन करोड़ रोमकूप व रोम होते हैं ऐसा स्कन्दपुराण में बताते हैं। इन ९ द्वारों व छिद्रों से पसीना, मल, मूत्र आदि गन्दगी निकलती रहती है। जैसे -

(क) नेत्रों से दूषित जल (श्लेष्मा) निकलता है। यह न निकले तो नेत्रों की हानि होने का भय होता है।

(ख) कान में मल बनता है, इकट्ठा होता है व निकलता रहता है। इसको सम्भाल कर नहीं रखा जाता अपितु गन्दा समझकर बाहर फैंक दिया जाता है।

(ग) मूत्रमार्ग से मूत्र शरीर से बाहर निकलता है। यह आहार का मल है, शरीर की गन्दगी है। कोई इसे सम्भाल कर नहीं रखना चाहता। शौचालय में पानी डालकर इसको साफ कर दिया जाता है। यदि मूत्र करने के पश्चात् पानी न डाला जाय तो वह स्थान बड़ा दुर्गन्धमय हो जाता है।

(घ) गुदामार्ग से मल व बदबूदार वायु निकलती है। शौचालय में यदि मल पड़ा हो तो कोई उसका प्रयोग नहीं करना चाहता। कोई व्यक्ति गुदा से गन्दी वायु छोड़े तो समीपस्थ व्यक्ति को

उससे बड़ी घृणा होती है। किसी सुन्दर व्यक्ति को दस्त लग जाएँ तो दूसरा व्यक्ति उसके पास खड़ा नहीं रह सकता। एक-दो वर्ष के बालक-बालिका देखने में बड़े प्रिय लगते हैं। यदि कोई अपनी चड्डी टट्टी-पेशाब से गीली व गन्दी कर दे, सब जगह शौच बिखेर दे, उस शौच को हाथ से मथकर अपने मुँह व नाक में लपेट ले तो जो भी आयेगा वह उससे दूर भागेगा।

(ङ) नाक से कभी कफ, कभी पीला स्राव व कभी पानी निकलता है।

(च) नाक से सांस बाहर जाता व अन्दर आता है। एक बार श्वास अन्दर जाता है तो मल लेकर बाहर आता है। वह इतना गन्दा बन जाता है कि दूसरा व्यक्ति उसे नहीं ले सकता। अनेक व्यक्ति एक कमरे में एकत्रित हों व ज्यादा देर तक उसमें रहें तो उनकी गर्म दुर्गन्धयुक्त सांसों से दम घुटने जैसा अनुभव होता है।

(छ) शरीर के लोमकूपों से दुर्गन्धयुक्त पसीना निकलता रहता है। यदि कोई व्यक्ति बड़े कमरे में व्यायाम करके वहीं घूमने लगे अथवा जिसने दो दिन से जूते-मोजे पहने हुए हैं वह यदि अपना जूता खोलकर कमरे में बैठ जाये तो पूरा का पूरा कमरा दुर्गन्ध से भर जायेगा। अन्यों के लिए वहाँ साँस लेना भी दूभर हो जायेगा। एक पाचक जो चूल्हे पर रोटी बना रहा

है व उसका पसीना टप-टप गूँथे हुए आटे में गिर रहा हो तो उस रोटी को खाने से घृणा होती है।

लोग पसीने की दुर्गन्ध को दबाने लिए पुष्पमाला, इतर आदि का प्रयोग करते हैं।

(ज) प्रातःकाल मुँह से खखार या थूक बाहर फैंकी जाती है। इसी प्रकार प्रतिदिन जीभ के ऊपर मैल की परत जम जाती है व उसे साफ किया जाता है। यदि ऐसा न करें तो मुँह बदबू मारने लगता है।

(झ) हाथ पैर के नाखून बढ़ने पर काटने पड़ते हैं। कटे हुए नाखून भोजन में गिर जाये तो भोजन से घृणा होती है। नाखून हड्डियों के मल हैं व अपवित्र हैं।

(ञ) बालों को कटवाया जाता है। यदि कटे हुए बाल शरीर पर लगे रहें तो उनसे घृणा होती है। इसलिए व्यक्ति बाल कटवाने के बाद तुरन्त स्नान करना चाहता है। बाल भी हड्डियों के मल हैं व घृणित हैं।

अविद्या के कारण मनुष्य बालों को पवित्र मानता है, उनको संवारता है व तेल आदि लगाता है। इसी प्रकार नाखूनों को बड़े रखता है व उनको सजाता है।

कभी अनुचित खान-पान व दिनचर्या से –

(क) मेद धातु के विकृत होने से शरीर से अधिक दुर्गन्ध आती है।

(ख) रक्त के अशुद्ध हो जाने से व्यक्ति के नासिका व मुख में दुर्गन्ध आती है। पसीना अधिक आता है व शरीर में दुर्गन्धि की अधिकता होती है।

(ग) त्रिदोष के प्रकोप से होने वाले प्रमेह रोग के पूर्वरूप में व्यक्ति के शरीर में मलों की अधिकता, शरीर के छिद्रों में मलों का अधिक लगा होना, शरीर पर मक्खियों का बैठना व शरीर में कच्ची मछलियों की तरह गन्ध आना आदि लक्षण उभरते हैं।

(घ) पित्त के प्रकुपित होने से खट्टी डकार आना, रक्त में कालापन व दुर्गन्धि, फफोले होना, मुँह में रक्त की दुर्गन्ध आना आदि लक्षण उभरते हैं।

पित्तप्रकृति वाले मनुष्य पसीना, मूत्र व मल अधिक करने वाले होते हैं। पित्त के विस्र होने के कारण पित्त प्रकृति वाले मनुष्य की काँख, मुँह, सिर व शरीर से अधिक दुर्गन्ध निकलती है।

(ङ) साध्य कुष्ठरोग में अधिक पसीने के होने से उसमें (कुष्ठ में) स्वेदज कृमियों (पसीने से उत्पन्न वाले कृमि) के पड़ जाने से वे कृमि त्वचा, मांस आदि को खा जाते हैं।

उपर्युक्त परीक्षणों से यह सिद्ध हुआ कि हमारा शरीर गन्दगी का निर्माण सतत करता है तभी तो मलमार्गों से उत्पन्न हुए मलमूत्र स्वेद आदि निरन्तर बाहर निकलते रहते हैं। जैसे किसी कपड़े में गोबर व कीचड़ रखकर उसकी पोटली

बनाकर उसे टाँग दिया जाए तो उसमें से गोबर रिसता रहेगा। जो अन्दर है वही बाहर निकलेगा। ऐसे ही यह शरीर है।

५ निधनाद् :-

मनुष्य के मरने पर कोई उसके शरीर को रखना नहीं चाहता। उसे अस्पृश्य माना जाता है। तुरन्त उसे घर आदि से निकालकर ज लाना चाहते हैं। क्योंकि उसमें सडाँध उत्पन्न होने लगती है। जीवित शरीर में तो मल-निष्कासनतन्त्र ठीक तरह से अपना कार्य करते हैं जिससे शरीर के अन्दर की गन्दगी बाहर निकलते रहने से उसकी कुछ शुद्धि होती रहती है। परन्तु मरने पर शरीर की शुद्धि होना बन्द हो जाती है और दूसरा वह सड़ना प्रारम्भ हो जाता है। मरने के तीन दिन बाद तो वह इतना बदबूदार हो जाता है कि उसे घर में रखना भी मुश्किल हो जाता है। जब किसी मनुष्य की रात्रि में मृत्यु होती है तो प्रातःकाल अन्तिमसंस्कार के समय तक शव को सड़ने से बचाने के लिए बर्फ के अन्दर रख दिया जाता है। जिस घर में उसे रखा जाता है उसको अशुद्ध माना जाता है। वहाँ भोजन बनाना व करना तो दूर रहा कोई पानी भी नहीं पीना चाहता। लाश को जलाने के बाद श्मशानघाट में उपस्थित लोग घर जाकर या वहीं पर नहाते हैं व कपड़े धोते हैं। घर के जिस स्थान पर शव रखा हुआ था उसे पानी से धोया जाता है व वहाँ की अशुद्ध वायु को निकालने के लिए यज्ञ किया जाता है।

उपर्युक्त वर्णन से सिद्ध होता है कि मानव शरीर गन्दगी का घर है, अपवित्र है।

६ कायमाधेयशौचत्वात् :-

प्रतिदिन स्नानादि शुद्धि की अपेक्षा होने से शरीर अपवित्र है। प्रतिदिन सवेरे सोकर उठने पर नेत्रों में भरा चिपचिपा कीचड़, मुँह का गाढ़ा थूक, कण्ठ का खखार व गले का बलगम साफ करना पड़ता है। मुख की दुर्गन्धि तथा दाँत व मुख में उत्पन्न होने वाले मलों को साफ करने के लिए मंजन, दातुन करना पड़ता है। जीभ पर चढ़ी मैल की परत को 'जीभी' से हटाते हैं। नाक में आए मल को छिकना पड़ता है। शरीर की बदबू, पसीना व मैल की चढ़ी परत को दूर करने के लिए स्नान करना पड़ता है। कान का मैल व नाखूनों के अन्दर की गन्दगी साफ की जाती है। नाखूनों को न काटने से उनमें मल, मिट्टी आदि गन्दगी इकट्ठी हो फँस जाती है व रोगकारक जीवाणुओं के निवास के लिए उत्तम क्षेत्र तैयार हो जाता है। सिर से रूसी व पपड़ी को झाड़ना पड़ता है। यदि सिर, त्वचा आदि शुद्ध न किए जाएँ तो इनमें कृमि (रोगकारक कीड़े) उत्पन्न हो जाते हैं। जिनके कारण खुजली, चकत्ते व फुन्सियाँ हो जाती हैं।

प्रतिदिन स्नानादि से शुद्ध करने पर भी यह पुनः गन्दा हो जाता है। अतः फिर इसकी शुद्धि करनी पड़ती है। इससे यह सिद्ध होता है कि शरीर अपने में गन्दगी को उत्पन्न करता रहता है। गन्दगी को उत्पन्न करने वाली वस्तु पवित्र नहीं हो सकती।

अतः श्लोक में कहे स्थान, बीज, उपष्टम्भ आदि हेतुओं से सिद्ध होता है कि शरीर अपवित्र है।

जो व्यक्ति इस प्रकार शब्द, अनुमान, प्रत्यक्ष व उपमान प्रमाणों से बार-बार परीक्षा करके शरीर की अपवित्रता के ज्ञान को मस्तिष्क में बनाए रखता है व पवित्रता के ज्ञान को छोड़ देता है उसका विकास होता है। निरन्तर उपर्युक्त प्रकार से विचार करने से तथा व्यवहार में भी शरीर को सदा अपवित्र रूप में देखने से संयमी, योगाभ्यासी, जितेन्द्रिय व्यक्ति को शरीर से घृणा होने लगती है। कालान्तर में वह शरीर को छोड़ने की इच्छा वाला हो जाता है।

सुन्दर व्यक्ति में कितना सौन्दर्य ?

(क) सुन्दर व्यक्ति के शरीर में २-३% ही सुन्दरता होती है। पतली-सी त्वचा जो हड्डी, मांस पर चढ़ी है उसमें सुन्दरता ईश्वर ने रखी है। उसके नीचे सब कुरूप मांस मलमूत्रादि ढके हैं। **हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम्।** (यजुर्वेद अ. ४०, मं. १७) अर्थात् इस संसार में सच्चाई चमकीले आवरण से ढकी हुई है। शरीर की सच्चाई (इसका घृणित रूप) भी अत्यन्त पतली चमकीली त्वचा से ढकी है। जैसे-जैसे बुढ़ापा आता है शरीर का यह नाममात्र का सौन्दर्य भी नष्ट होता जाता है।

(ख) सुन्दर व्यक्ति में वास्तविक सौन्दर्य तो उसमें विद्यमान जीव के श्रेष्ठ गुणकर्मस्वभावों का होता है जिनके कारण वह सुन्दर या अच्छा लगता है। तथा जिन के कारण कुरूपवाला अथवा काला व्यक्ति भी अधिक अच्छा लगता है। निकृष्ट गुण कर्म व स्वभावों के कारण गोरा व्यक्ति भी प्रिय या अच्छा नहीं लगता। मृत व्यक्ति, जिसमें से जीव निकल गया है, सुन्दररूपवाला होने पर भी आकर्षण का केन्द्र नहीं होता। श्रेष्ठ गुण, कर्म व स्वभाव दूसरों को सुख देते हैं जिससे इन श्रेष्ठ गुणादि से युक्त व्यक्ति दूसरों का प्रिय बन जाता है।

इसलिए दूसरे व्यक्ति के बाहरी रूप, रंग के साथ-साथ उसके गुण, कर्म व स्वभावों का भी परीक्षण करना चाहिए। तब उसका वास्तविक सौन्दर्य समझ में आयेगा।